7 ठेले पर हिमालय

इस यात्रा-वृत्तांत में लेखक हमें हिमसम्राट हिमालय के करीब ले जाता है। वहाँ बादल नीचे उतर रहे थे और एक-एक कर नए-नए शिखरों की हिम-रेखाएँ अनावृत हो रही थीं। कितनी-कितनी पुरानी है यह हिमराशि! जाने किस आदिम काल से यह शाश्वत अविनाशी हिम इन शिखरों पर जमा हुआ है। इसीलिए हिमालय की इस बरफ़ को कहा जाता है एटर्नल स्नो अर्थात चिरंतन हिम।

ठेले पर हिमालय! खासा दिलचस्प शीर्षक है न! और यकीन कीजिए, इसे बिलकुल ढूँढ़ना नहीं पड़ा। बैठे-बिठाए मिल गया। अभी कल की बात है, मैं एक पान की दुकान पर अपने अल्मोड़ावासी मित्र के साथ खड़ा था कि तभी ठेले पर बरफ़ की सिलें लादे हुए बरफ़वाला आया। ठंडी, चिकनी, चमकती बरफ़ से भाप उड़ रही थी। वे क्षणभर उस बरफ़ को देखते रहे, उठती हुई भाप में खोए रहे और खोए-खोए से ही बोले, "यही बरफ़ तो हिमालय की शोभा है।" और तत्काल शीर्षक मेरे मन में कौंध गया—ठेले पर हिमालय।

सच तो यह है कि सिर्फ़ बरफ़ को बहुत निकट से देख पाने के लिए ही हम लोग कौसानी गए थे। नैनीताल से रानीखेत और रानीखेत से मझकाली के भयानक मोड़ों को पार करते हुए कोसी। कोसी से एक सड़क अल्मोड़े चली जाती है, दूसरी कौसानी।

कितना कष्टप्रद, कितना सूखा और कितना कुरूप है वह रास्ता! पानी का कहीं नाम-निशान नहीं, सूखे-भूरे पहाड़, हरियाली का नाम नहीं। ढालों को काटकर बनाए हुए टेढ़े-मेढ़े रास्ते। कोसी पहुँचे तो सभी के चेहरे पीले पड़ चुके थे।

कोसी से बस चली तो रास्ते का सारा दृश्य बदल गया। सुडौल पत्थरों पर कल-कल करती हुई कोसी, किनारे के छोटे-छोटे सुंदर गाँव और हरे मखमली खेत। कितनी सुंदर है सोमेश्वर की घाटी! हरी-भरी! एक के बाद एक बस स्टैंड पड़ते थे, छोटे-छोटे पहाड़ी डाकखाने,

चाय की दुकानें और कभी-कभी कोसी या उसमें गिरनेवाले नदी-नालों पर बने हुए पुल। कहीं-कहीं सड़क निर्जन चीड़ के जंगलों से गुज़रती थी।

सोमेश्वर की घाटी के उत्तर में जो ऊँची पर्वतमाला है, उसपर, बिलकुल शिखर पर, कौसानी बसा हुआ है। कौसानी से दूसरी ओर फिर ढाल शुरू हो जाती है। कौसानी के अड्डे पर जाकर बस रुकी। छोटा-सा, बिलकुल उजड़ा-सा गाँव और बरफ़ का तो कहीं नाम-निशान नहीं। ऐसा लगा जैसे हम ठगे गए। बस से उतरते समय मैं बहुत खिन्न था।

बस से उतरा ही था कि जहाँ का तहाँ पत्थर की मूर्ति-सा स्तब्ध खड़ा रह गया। कितना अपार सौंदर्य बिखरा था सामने की घाटी में। पर्वतमाला ने अपने अंचल में यह जो कत्यूर की रंग-बिरंगी घाटी छिपा रखी है, इसमें किन्नर और यक्ष ही तो वास करते होंगे। पचासों मील चौड़ी यह घाटी, हरे मखमली कालीनों जैसे खेत, सुंदर गेरू की शिलाएँ काटकर बने हुए लाल-लाल रास्ते, जिनके किनारे सफ़ेद-सफ़ेद पत्थरों की कतार और इधर-उधर से आकर आपस में उलझ जानेवाली बेलों की लड़ियों-सी नदियाँ। मन में बेसाख्ता यही आया कि इन बेलों की लड़ियों को उठाकर कलाई में लपेट लूँ। आँखों से लगा लूँ।

अकस्मात हम एक दूसरे ही लोक में चले आए थे। इतना सुकुमार, इतना सुंदर, इतना सजा हुआ और इतना निष्कलंक कि लगा इस धरती पर तो जूते उतारकर, पाँव पोंछकर आगे बढ़ना चाहिए।

धीरे-धीरे मेरी निगाह ने इस घाटी को पार किया और जहाँ ये हरे खेत, नदियाँ और वन, क्षितिज के धुँधलेपन में, नीले कोहरे में घुल जाते थे, वहाँ पर कुछ छोटे पर्वतों का आभास अनुभव किया। उसके बाद बादल थे और फिर कुछ नहीं। कुछ देर उन बादलों में निगाह भटकती रही कि अकस्मात फिर एक हलका-सा विस्मय का धक्का मन को लगा।

इन धीरे-धीरे खिसकते हुए बादलों में यह कौन चीज़ है जो अटल है! यह छोटा-सा बादल के टुकड़े-सा, और कैसा अजब रंग है इसका। न सफ़ेद, न रुपहला, न हलका नीला... पर तीनों का आभास देता हुआ। यह है क्या? बरफ़ तो नहीं है। हाँ जी! बरफ़ नहीं है तो क्या है? और बिजली-सा यह विचार मन में कौंधा कि इसी घाटी के पार वह नगाधिराज, पर्वत सम्राट हिमालय है। इन बादलों ने उसे ढाँप रखा है, वैसे वह जो सामने है, उसका एक कोई छोटा-सा बाल स्वभाववाला शिखर बादलों की खिड़की से झाँक रहा है। मैं हर्षातिरेक से चीख उठा, "बरफ़! वह देखो!"

शुक्ल जी, सेन और अन्य सभी ने देखा, पर अचानक वह फिर लुप्त हो गया। लगा, उसे बाल-शिखर जान किसी ने अंदर खींच लिया। खिड़की से झाँक रहा है, कहीं गिर न पड़े!

पर उस एक क्षण के हिम-दर्शन ने हममें जाने क्या भर दिया था। सारी खिन्नता, निराशा और थकावट, सब छूमंतर हो गई। हम सब व्याकुल हो उठे। अभी ये बादल छँट जाएँगे और फिर हिमालय हमारे सामने खड़ा होगा—निरावृत। असीम सौंदर्यराशि हमारे सामने अभी-अभी अपना घूँघट धीरे से खिसका देगी और... और तब...? और तब...? सचमुच मेरा दिल बुरी तरह धड़क रहा था।

डाकबँगले के खानसामे ने बताया कि आप लोग खुशकिस्मत हैं साहब! आपसे पहले 14 टूरिस्ट आए थे। हफ़्तेभर पड़े रहे, बरफ़ नहीं दिखी। आज तो आपके आते ही आसार खुलने के हो रहे हैं।

सामान रख दिया गया। पर सभी बिना चाय पिए सामने के बरामदे में बैठे रहे और अपलक सामने देखते रहे। बादल धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे और एक-एक कर नए-नए शिखरों की हिम-रेखाएँ अनावृत हो रही थीं।

और फिर सब खुल गया। बाईं ओर से शुरू होकर दाईं ओर गहरे शून्य में धँसती जाती हुई हिम शिखरों की ऊबड़-खाबड़, रहस्यमयी, रोमांचक शृंखला। हमारे मन में उस समय क्या भावनाएँ उठ रही थीं, अगर बता पाता तो यह खरोंच, यह पीर ही क्यों रह गई होती? सिर्फ़ एक धुँधला-सा संवेदन इसका अवश्य था कि जैसे बरफ़ की सिल के सामने खड़े होने पर मुँह पर ठंडी-ठंडी भाप लगती है, वैसे ही हिमालय की शीतलता माथे को छू रही है।

सूरज डूबने लगा और धीरे-धीरे ग्लेशियरों में पिघला केसर बहने लगा। बरफ़ कमल के लाल फूलों में बदलने लगी। घाटियाँ गहरी पीली हो गईं। अँधेरा होने लगा तो हम उठे। मुँह-हाथ धोने और चाय पीने लगे। पर सब चुपचाप थे, गुमसुम, जैसे सबका कुछ छिन गया हो, या शायद सबको कुछ ऐसा मिल गया हो जिसे अंदर ही अंदर सहेजने में सब आत्मलीन हों या अपने में डूब गए हों।

दूसरे दिन घाटी में उतरकर मीलों चलकर हम बैजनाथ पहुँचे, जहाँ गोमती बहती है। गोमती की उज्ज्वल जलराशि में हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों की छाया तैर रही थी। पता नहीं, उन शिखरों पर कब पहुँचूँ, इसीलिए उस जल में तैरते हुए हिमालय से जी भरकर भेंटा, उसमें डूबा रहा।

आज भी उसकी याद आती है तो मन पिरा उठता है। कल ठेले पर बरफ़ को देखकर अल्मोड़े के मेरे मित्र जिस तरह स्मृतियों में डूब गए, उस दर्द को समझता हूँ। इसीलिए जब ठेले पर हिमालय की बात कहकर हँसता हूँ तो वह उस दर्द को भुलाने का ही बहाना है। वे बरफ़ की ऊँचाइयाँ बार-बार बुलाती हैं, और हम हैं कि चौराहों पर खड़े, ठेले पर लदकर निकलनेवाली बरफ़ को ही देखकर मन बहला लेते हैं।

— धर्मवीर भारती